SĀRA SERIES

श्री नामाष्टकम्

पवित्र नाम की महिमा

Dr Keshav Anand Das

श्री नामाष्टकम्

भगवान के नाम की महिमा

डॉ. केशवानंद दास

विषय-सूची (Contents)

भूमिका — स्तवमाला की अंतिम रचना....................3

श्लोक १ — भगवान का नाम ही उपनिषदों का असली सार है....................5

श्लोक २ — नाम लेने का अधिकार हर किसी को है....................11

श्लोक ३ — नाम सिर्फ पाप नहीं मिटाता, यह उससे कहीं ज़्यादा देता है....................18

श्लोक ४ — नाम और प्रारब्ध कर्म....................24

श्लोक ५ — नाम के प्रति मेरा प्रेम और बढ़े....................31

श्लोक ६ — नाम, भगवान के विग्रह से भी ज़्यादा दयालु रूप है....................38

श्लोक ७ — जब हर दिन एक त्यौहार बन जाता है....................41

श्लोक ८ — सबसे मीठा अमृत....................45

लेखक के बारे में....................48

भूमिका — स्तवमाला की अंतिम रचना

श्रील रूप गोस्वामी ने बहुत सारी रचनाएँ लिखी हैं, और उनमें से एक बड़ा संग्रह है "स्तवमाला"। इस पूरे संग्रह की सबसे अंतिम कविता है — नामाष्टकम्। यहाँ रूप गोस्वामी एक बहुत गहरी बात कहना चाहते हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण से जुड़ी जो भी भावना है, जो भी महिमा है, और भक्ति में जो भी पूर्णता मिलती है — यह सब कुछ आखिर में भगवान के नाम से ही निकलता है, और उसी से शुरू होता है।

स्तवमाला में तीन चैतन्याष्टकम् आते हैं। फिर उसके बाद कृष्ण की महिमा, राधा की महिमा, राधा-कृष्ण की महिमा, राधा के विरह और सबसे अंत में नामाष्टकम् हैं। यह जो क्रम है, यह अपने आप में एक सीख है। बात यह है — सब कुछ नाम से ही शुरू होता है, क्योंकि बाकी सब कुछ, आखिर में, इसी नाम से निकलकर आता है।

श्रीमद्भागवतम् में भी यही बात कही गई है। जो लोग इस संसार से थक चुके हैं, ऊब चुके हैं, और जो लोग भगवान की तरफ जाना चाहते हैं — इन दोनों तरह के लोगों के लिए योगियों ने एक ही रास्ता बताया है, और वह है हरि के नाम का बार-बार, लगातार कीर्तन करना। यही जीवन का असली लक्ष्य है — कृष्ण के नाम की महिमा को पूरी दुनिया में फैला देना।

नामाष्टकम् में कुल आठ श्लोक हैं। बलदेव विद्याभूषण जी ने इस पर एक टीका भी लिखी थी। और श्रील प्रभुपाद अपने प्रवचनों में बार-बार इसका पहला और छठा श्लोक दोहराते थे। अब आगे हम एक-एक करके सारे श्लोक को आसान भाषा में समझेंगे — इसमें छुपा हुआ दर्शन क्या है, यह मायावाद की सोच को कैसे चुनौती देता है, और हर इंसान को, चाहे वो कितना भी गिरा हुआ क्यों न हो, यह क्या वादा करता है।

श्लोक १ — भगवान का नाम ही उपनिषदों का असली सार है

निखिल-श्रुति-मौलि-रत्न-माला-

द्युति-नीराजित-पाद-पङ्कजान्त।

अयि मुक्त-कुलैरुपास्यमानं

परितस्त्वां हरि-नाम संश्रयामि ॥१॥

हे हरि-नाम! समस्त वेदों के मुकुट-रत्न स्वरूप उपनिषदों की दिव्य कांति आपके चरण-कमलों की आरती उतारती है। शुकदेव और नारद जैसे मुक्त पुरुषों के समूह द्वारा आप निरंतर पूजे जाते हैं। मैं पूरी तरह से आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।

रूप गोस्वामी नामाष्टकम् की शुरुआत ही एक बहुत बड़ी बात से करते हैं। वे कहते हैं कि सारे उपनिषद — जिन्हें वेदों का सबसे ऊँचा और सबसे कीमती ज्ञान माना जाता है, जैसे मुकुट में जड़े हुए रत्न होते हैं — वो सारे उपनिषद मिलकर कृष्ण के नाम के चरण-कमलों की आरती उतारते हैं।

अब वेदों में तो बहुत सारी बातें बताई गई हैं — यज्ञ करो, दान करो, तप करो, ध्यान लगाओ, और भी न जाने कितनी बातें। लेकिन आखिर में सारे उपनिषद हमें एक ही जगह की तरफ इशारा करते हैं — कृष्ण का पवित्र नाम। इसके बराबर और कुछ भी नहीं है।

सनातन गोस्वामी जी भी अपनी किताब "बृहद्-भागवतामृत" में इसी नतीजे पर पहुँचते हैं। वे एक कहानी बताते हैं — स्वर्ग में एक सभा लगती है, जहाँ पुराण, वेद, श्रीमद्भागवतम् — ये सब अपने आप को एक-दूसरे से बड़ा साबित करने की कोशिश करते हैं। आखिर में श्रीमद्भागवतम् खुद कहता है कि जिसका नाम सुनने से, गाने से, प्रणाम करने से, या बस याद करने से एक बहुत नीच जाति का इंसान भी तुरंत ऊँचा बन जाता है, तो फिर भगवान के सीधे दर्शन की तो बात ही अलग है!

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्

यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

"हे भगवन*!* आपके **नाम का श्रवण और कीर्तन** करने से*,* आपको **प्रणाम** करने से अथवा आपका **स्मरण** करने मात्र से*,* अत्यंत निम्न कुल *(*जैसे कुत्ता खाने वाले चांडाल परिवार*)* में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी तुरंत **वैदिक यज्ञ करने के योग्य *(*पवित्र*)*** हो जाता है। फिर उनके विषय में तो कहना ही क्या है*,* जिन्हें **आपके साक्षात् दर्शन** करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो।

श्रीमद्-भागवतम् 3.33.6

इससे यही समझ आता है — जीवन का लक्ष्य यही होना चाहिए कि शरीर छूटने से पहले जितना हो सके, उतना कृष्ण का नाम ले लिया जाए। बाकी सब कुछ तो एक दिन खत्म हो जाना है, पर नाम ही वह इकलौती दौलत है जो हमारे साथ आगे भी जाती है।

नाम ही उपनिषदों का सार क्यों है

इसी शुरुआती लाइन में रूप गोस्वामी मायावाद की उस सोच को भी चुनौती दे रहे हैं। अगर उपनिषदों का सार सिर्फ एक निराकार ब्रह्म होता — यानी बिना किसी रूप वाला भगवान — तो फिर नाम के चरण-कमलों की पूजा करने की बात ही बेमानी हो जाती। लेकिन रूप गोस्वामी साफ कहते हैं कि उपनिषदों का असली सार भगवान का नाम है, और इसका मतलब यह है कि कृष्ण का एक रूप भी है — श्यामसुंदर।

शंकराचार्य जी के हिसाब से उपनिषदों का सार निराकार ब्रह्म ही है। मायावादी लोग हमारी यह बात नहीं मानेंगे, और सच कहें तो हमें इसकी चिंता करने की जरूरत भी नहीं है। रूप गोस्वामी ने तो अपनी बात बिल्कुल साफ रख दी है।

पर श्लोक यहीं खत्म नहीं होता। रूप गोस्वामी आगे कहते हैं — "**अयि मुक्त-कुलैरूपास्यमानं** "

— यानी जो आत्माएँ पहले से ही मुक्त हो चुकी हैं, वो भी भगवान के नाम की पूजा करती हैं।

इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतम् में भी मिलती है

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

सूत गोस्वामी ने कहा*:* जो पूर्णतः **आत्माराम हैं** *(*आत्मानंद में मग्न रहने वाले ज्ञानी*)* और जो संसार के **सभी प्रकार के बंधनों एवं ग्रन्थियों से मुक्त हो चुके हैं*,*** वे भी भगवान श्रीहरि के प्रति **बिना किसी सांसारिक इच्छा के *(*अहैतुक*)* प्रेममयी भक्ति करते हैं**। क्योंकि **भगवान श्रीहरि के दिव्य गुण इतने अलौकिक और आकर्षक हैं** कि वे मुक्त आत्माओं को भी अपनी ओर खींच लेते हैं।

श्रीमद्-भागवतम् 1.7.10

जो आत्माराम मुनि और ऋषि हैं, यानी जो पहले से ही अपने आप में पूरी तरह संतुष्ट हैं, वो भी हरि की बिना किसी स्वार्थ वाली भक्ति करते हैं। सत्ययुग के समय में ध्यान-योग की सलाह दी जाती थी, लेकिन जब उन्हीं ध्यानियों ने अपने मन पर वश पा लिया, तो अंत में वे भी नाम की उपासना की तरफ ही मुड़ गए।

भगवान के नाम की यह महिमा सिर्फ एक ही परंपरा तक सीमित नहीं है। बाइबिल में भी लिखा है, "तेरा नाम पवित्र माना जाए," और पुराने नियम में भी भगवान का नाम लेने की बात कही गई है। यहूदी लोग तो भगवान के नाम को इतना पवित्र मानते थे कि वे खुद को उसे बोलने के लायक भी नहीं समझते थे। पर समय बीतने के साथ, कृष्ण का नाम लेने की यह आदत धीरे-धीरे लोग भूलते चले गए।

रूप गोस्वामी की यह लाइन — **"अयि मुक्त-कुलैरूपास्यमानं"** — एक और बहुत गहरी बात भी बताती है। चाहे कोई अभी बंधन में हो, या पहले से ही मुक्त हो चुका हो — दोनों ही हालात में नाम की पूजा हमेशा सही और ज़रूरी बनी रहती है। यह सीधे-सीधे मायावाद की उस सोच को चुनौती देता है जिसमें कहा जाता है कि मुक्ति मिलने के बाद जीव और भगवान एक हो जाते हैं, और फिर

भक्ति करने की कोई जरूरत ही नहीं रहती। रूप गोस्वामी एक तरफ नाम की महिमा गा रहे हैं, और उसी साँस में इस गलत धारणा को भी काट दे रहे हैं।

फिर वे बहुत ही व्यक्तिगत ढंग से कहते हैं — "**परितस्त्वां हरि-नाम संश्रयामि**" — यानी, हे हरिनाम, मैं पूरी तरह से आपकी शरण में आता हूँ।

महाप्रभु ने भी हमें यही सिखाया है — चाहे खाते वक्त हो, सोते वक्त हो, बैठे हों, खड़े हों, या चल रहे हों — किसी न किसी तरह कृष्ण का नाम लेते ही रहना चाहिए। इसलिए हमें लगातार नाम-जप करने की आदत डालनी चाहिए। और जब हम ऐसा करते हैं, तो नाम खुद-ब-खुद हमें भक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ाता चला जाता है।

खाइते शइते यथा तथा नाम लय ।

"चाहे खाते समय हो, सोते समय हो, या जैसी भी परिस्थिति में हों — जिस किसी तरह से भी हो सके, भगवान का नाम लेते रहना चाहिए।"

चैतन्य-चरितामृत की अंत्य-लीला ***20.18***

श्लोक २ — नाम लेने का अधिकार हर किसी को है

अब यहाँ एक सवाल उठता है। अगर सिर्फ मुक्त हो चुकी आत्माएँ ही नाम की पूजा करती हैं, तो फिर हम जैसे साधारण, पापी इंसानों की जीभ पर भगवान का नाम आए ही क्यों? दूसरे श्लोक में रूप गोस्वामी इसी सवाल का जवाब देते हैं।

जय नामधेय मुनि-वृन्द-गेय हे

जन-रञ्जनाय परमक्षराकृते।

त्वमनादरादपि मनागुदीरितं

निखिलोग्र-ताप-पटलीं विलुम्पसि ॥२॥

हे पवित्र नाम! आपकी जय हो, मुनियों का समूह निरंतर आपका गान करता है। आप जीवों को आनंद प्रदान करने के लिए परम दिव्य अक्षरों के रूप में प्रकट हुए हैं। यदि कोई अनादर या उपेक्षा से भी आपका एक बार थोड़ा सा उच्चारण कर दे, तो आप उसके संसार के सभी उग्र और घोर कष्टों का तुरंत नाश कर देते हैं।

मुनि हों, ऋषि हों, योगी हों, या तपस्वी हों — सब भगवान के नाम की महिमा गाते हैं। कोई इसे ज़ोर से बोलकर गाता है, तो कोई अपने मन के भीतर, समाधि में, बहुत गहरे आनंद का अनुभव करते हुए गाता है। यह जो समाधि का आनंद है, यह बाहर से आमतौर पर दिखता नहीं है। लेकिन महाप्रभु ने इस भीतरी आनंद के समंदर को बाहर भी दिखा दिया — नाचकर, संकीर्तन करके, और अपनी शिक्षाओं के ज़रिए।

नाम और कृष्ण में कोई फर्क नहीं है

रूप गोस्वामी कहते हैं कि कृष्ण खुद अक्षरों के रूप में हमारे सामने आते हैं — "परमक्षराकृते "। हरे कृष्ण के जो ये अक्षर हैं, जो यह आवाज़ है, यह कोई मामूली चीज़ नहीं है। अगर कोई इंसान बार-बार सिर्फ "पानी, पानी" बोलता रहे, तो उससे उसकी प्यास नहीं बुझेगी। लेकिन जब हम सच्चे मन से, शुद्ध होकर हरे कृष्ण का जप करते हैं, तो हमारी आत्मा की वह प्यास बुझ सकती है जो न जाने कितने जन्मों से जमा हुई है।

ऐसा क्यों होता है? क्योंकि भगवान का नाम कोई अलग चीज़ नहीं है — नाम खुद भगवान ही हैं। नाम की यही सबसे बुनियादी बात है — नाम और नाम लेने वाले भगवान में कोई फर्क नहीं। कृष्ण अपने नाम के ज़रिए ही हमें आनंद देते हैं — इसे कहते हैं नाम-अवतार। भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर तो नाम को "नाम

प्रभु" कहकर बुलाया करते थे। भगवान ने राम बनकर, कृष्ण बनकर, वामन बनकर — इस तरह कई रूपों में जन्म लिया है, लेकिन कलियुग में उन्होंने खुद को नाम के रूप में ही प्रकट किया है।

एक बार का जप भी पहाड़ जैसे पाप को जला सकता है

रूप गोस्वामी आगे एक बहुत ही बड़ी बात कहते हैं — "**त्वमनादरादपि मनागुदीरितं**" — यानी, अगर कोई इंसान बिना किसी श्रद्धा के भी, बस एक बार भगवान का नाम ले ले, तो यह नाम उसके बहुत बड़े-बड़े पापों के पहाड़ को भी तोड़ सकता है।

अब सवाल है कि ऐसा हो कैसे सकता है? असल में, जो लोग बेध्यानी से नाम लेते हैं, वो अक्सर पापी लोग ही होते हैं। फिर भी नाम में इतनी ताकत होती है कि वह इतने भारी पाप को भी जला सकता है। इसे एक आसान उदाहरण से समझ सकते हैं — रुई के पूरे पहाड़ को जलाने के लिए बहुत बड़ी आग की ज़रूरत नहीं होती, एक छोटी सी चिंगारी ही काफी होती है।

पापों को भी दो हिस्सों में बाँटा गया है — पाप और महापाप। महापाप में आती हैं ये बातें — शराब पीना, किसी ब्राह्मण की हत्या करना, किसी दूसरे की पत्नी या गुरु की पत्नी के साथ गलत संबंध रखना, और किसी का धन चुराना। ये कोई

काल्पनिक बातें नहीं हैं — शराब पीना, चोरी करना, गलत संबंध रखना — ये सब आज के समाज में साफ-साफ दिखाई देती हैं।

तो फिर हमारे पाप मिटते क्यों नहीं?

अगर नाम में इतनी ताकत है, तो फिर जप करने के बाद भी हमारे पाप क्यों नहीं मिटते?

इसका जवाब बहुत सीधा है — असल में हमें नाम पर उतना भरोसा ही नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि अगर कोई इंसान इस भरोसे के साथ जप करे कि यह नाम नामुमकिन को भी मुमकिन बना सकता है, तो अगर वह किसी पहाड़ को भी समुद्र में कूदने के लिए कहे, तो पहाड़ सच में कूद जाएगा। शास्त्रों में, यहाँ तक कि बाइबिल में भी, भरोसे की इस असाधारण ताकत की बात कही गई है — मरे हुए इंसान को भी जिंदा करने जितनी ताकत। यह सोचकर थोड़ा अजीब लगता है, पर सच यही है — शायद हमारे पास उतना भरोसा है ही नहीं, जितना हम खुद को समझाते हैं कि है।

नित्यानंद प्रभु की शक्ति जाह्नवा देवी से जुड़ी एक घटना है, जब वे वृंदावन में रह रही थीं। वृंदावन के लोग बहुत दुखी थे क्योंकि गाँव के एक छोटे बच्चे की मौत हो गई थी। जाह्नवा देवी ने उस बच्चे के सिर पर हाथ रखकर हरे कृष्ण का जप किया, और वह बच्चा फिर से जिंदा हो उठा। जब गाँव वालों ने पूछा कि यह कैसे हो

गया, तो उन्होंने बहुत सहजता से कहा कि इसमें कोई अनोखी बात नहीं है, क्योंकि कृष्ण के नाम में तो इतनी ताकत है कि इससे करोड़ों लोग जिंदा किए जा सकते हैं। चाहे कोई इस घटना को सच माने या न माने, बात यहाँ यह समझनी है कि हमें नाम पर भरोसा करना सीखना होगा।

एक और पुरानी कहानी भी यही सिखाती है। जब भगवान राम ने रावण को हराया और वापस आए, तो विभीषण ने उनसे कहा कि राम-सेतु को तोड़ दिया जाए, ताकि आगे चलकर कोई राक्षस उसका इस्तेमाल करके फिर से हमला न कर सके। भगवान राम ने वह सेतु तुड़वा दिया। कुछ समय बाद, विभीषण के कुछ दोस्तों को समुद्र पार करना था, पर वे उड़ नहीं सकते थे। विभीषण ने उन्हें एक कागज़ पर एक मंत्र लिखकर दिया और कहा कि इसे मुट्ठी में कसकर पकड़े रहना और पानी पर चलते जाना। वे चलने भी लगे — लेकिन बीच रास्ते में उनके मन में जिज्ञासा जाग गई। उन्होंने मुट्ठी खोलकर देखा, तो पता चला कि उस कागज़ पर सिर्फ "राम" नाम लिखा हुआ था। यह देखते ही उनके मन में शक पैदा हो गया कि क्या सिर्फ एक नाम में इतनी ताकत हो सकती है — और जैसे ही उनका भरोसा टूटा, वे उसी वक़्त समुद्र में डूब गए।

अब चाहे यह घटना बिल्कुल वैसे ही हुई हो या नहीं, इससे जो सीख मिलती है वो साफ है — हम में भरोसे की कमी है। हमें जितना भरोसा होता है, उतना ही फल भी मिलता है। इसीलिए रूप गोस्वामी कहते हैं — **"निखिलोग्र-ताप-पटलीं**

विलुम्पसि " — यानी नाम सबसे बड़े दुख और सबसे बड़े पापों को भी खत्म कर सकता है। हमें इसी भरोसे के साथ जप करना चाहिए कि भगवान के नाम से असंभव चीज़ें भी संभव हो जाती हैं। इस दुनिया में मौत को हराना नामुमकिन सा लगता है, लेकिन जो सच में नाम की शरण में चला जाता है, वह आखिर में मरता नहीं है।

भक्ति करने के लिए कोई खास योग्यता नहीं चाहिए

यह श्लोक एक और बहुत बड़ी और क्रांतिकारी बात भी बताता है — नाम लेने का हक हर किसी को है। चाहे कोई कितना भी पापी क्यों न हो, उसका पाप उसे नाम लेने से नहीं रोक सकता।

यहाँ रूप गोस्वामी फिर से शंकराचार्य से जुड़ी उस सोच को चुनौती देते हैं, जिसमें कहा जाता है कि ब्रह्म की पूजा करने से पहले इंसान को पहले खुद को पापों से मुक्त और योग्य बनाना पड़ता है। भक्ति का रास्ता इससे बिल्कुल अलग है — यह हमसे पहले परफेक्ट बनने की माँग नहीं करता। ज्ञान के रास्ते पर चलने के लिए ज्ञान, वैराग्य, और छह अच्छे गुण, जिन्हें षट्-संपत्ति कहा जाता है, ज़रूरी होते हैं। खुद शंकराचार्य जी ने भी लिखा था —

"भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते "

यानी हे मूर्ख मन, गोविंद को भज, गोविंद को भज।

हम इस श्लोक का उल्लेख तो ज़रूर करते हैं, पर उस समझ को हम सही नहीं मानते जो कभी-कभी दी जाती है — कि जो लोग ज्ञान के रास्ते पर नहीं चल सकते, जो संस्कृत नहीं सीख सकते, या जो गहरी दार्शनिक पढ़ाई नहीं कर सकते, वे भक्ति को एक हल्के, दूसरे दर्जे के रास्ते के तौर पर अपना लें। यह सोच रूप गोस्वामी की बिल्कुल भी नहीं है। भक्ति कोई ऐसा रास्ता नहीं है जो सिर्फ कम बुद्धि वाले लोगों के लिए बचा हुआ हो। बल्कि श्रीमद्भागवतम् में जब उद्धव जी गोपियों से मिलने जाते हैं, तो वह घटना यही दिखाती है कि सूखा, सिर्फ किताबी ज्ञान भी आखिर में जाकर शुद्ध, सहज प्रेम-भक्ति के सामने ही झुक जाता है, और वहीं जाकर उसे अपनी पूर्णता मिलती है।

श्लोक ३ — नाम सिर्फ पाप नहीं मिटाता, यह उससे कहीं ज़्यादा देता है

अब अगर नाम इतने सारे पापों को मिटा देता है, तो क्या बस यही इसका काम है?

असल में मुक्ति का मतलब सिर्फ पाप का खत्म हो जाना नहीं हो सकता — क्योंकि खत्म होना तो एक नकारात्मक बात है। हमारे मन में सहज ही यह सवाल आता है — नाम-जप का कोई पॉजिटिव फायदा भी तो होना चाहिए, वह क्या है?

एक बार निमाई पंडित ने गदाधर पंडित से पूछा कि मुक्ति की सही परिभाषा क्या है। गदाधर पंडित ने पतंजलि के योग-सूत्र का हवाला देते हुए कहा — "अत्यंतिक-दुःख-निवृत्ति", यानी मुक्ति का मतलब है सारे दुखों का पूरी तरह खत्म हो जाना। निमाई ने इस बात को माना तो सही, पर कहा कि यह अधूरी बात है — इसमें एक अच्छी, पॉजिटिव बात भी होनी चाहिए। सिर्फ दुख का चले जाना काफी नहीं है, साथ में सुख का अनुभव होना भी ज़रूरी है। और यही तीसरे श्लोक की सबसे गहरी बात है।

यदाभासोऽप्युद्यन् कवलित-भव-ध्वान्त-विभवो

दृशं तत्त्वान्धानां अपि दिशति भक्ति-प्रणयिनीम्।

जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्-नाम-तरणे

कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति ॥३॥

हे सूर्य के समान अज्ञान रूपी अंधकार मिटाने वाले भगवन्-नाम! आपके पूर्ण रूप से प्रकट होने की तो बात ही क्या, यदि आपकी केवल एक आभा (नामाभास) भी उदित हो जाए, तो वह इस संसार के घोर अज्ञान को निगल जाती है और सत्य के प्रति अंधे हो चुके लोगों को भी दिव्य प्रेमाभक्ति की दृष्टि प्रदान करती है। इस संसार में ऐसा कौन सा चतुर या विद्वान पुरुष है, जो आपकी पूर्ण महिमा का वर्णन कर सके? (अर्थात कोई नहीं कर सकता)।

रूप गोस्वामी कहते हैं कि नाम की एक हल्की सी, धुंधली सी झलक भी हमारे हृदय में छिपे हुए भगवान के लिए प्रेम को जगा सकती है। नाम तब भी अपना काम करता है, जब हमें खुद यह पूरी तरह समझ भी नहीं होता कि हम क्या कर रहे हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतम् में भी मिलती है — किसी इशारे में, मज़ाक में, गाते-गाते ताल में, या यहाँ तक कि किसी का तिरस्कार करते हुए भी अगर वैकुण्ठ का नाम ले लिया जाए, तो इससे भी सारे पाप धुल जाते हैं।

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।

वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

जो व्यक्ति भगवान के पवित्र नाम का जप करता है, वह अनंत (अथाह) पापों के फलों से तुरंत मुक्त हो जाता है, चाहे वह अप्रत्यक्ष रूप से (संकेत में), मजाक में, संगीत या मनोरंजन के रूप में, अथवा लापरवाही (असावधानी) से ही क्यों न जप करे। शास्त्रों के सभी विद्वान इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

श्रीमद्-भागवतम 6.2.14

मान लीजिए कोई भक्तों को देखकर कह दे, "अरे, ये हरे कृष्ण वाले आ गए" — यह भी एक तरह से इशारे में नाम लेना ही हुआ। कोई भक्तों का मज़ाक उड़ाते हुए, या उन्हें गाली देते हुए भी नाम ले ले, तो भी नाम अपना काम शुरू कर देता है। यानी नाम यह इंतज़ार नहीं करता कि पहले हमें इसकी पूरी समझ आ जाए, फिर ही यह काम करेगा।

नाम भक्ति का दरवाज़ा खोल देता है

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें शास्त्र और गहरी दार्शनिक बातों की समझ नहीं होती। लेकिन अगर वे थोड़े से भरोसे के साथ भी नाम ले लें, तो यह नाम उन्हें धीरे-धीरे प्रेम की तरफ ले जाना शुरू कर देता है। रूप गोस्वामी कहते हैं — **"दृशं तत्त्वान्धानां अपि दिशति भक्ति-प्रणयिनीम् "** — यानी नाम ऐसे इंसान को भी

भक्ति के रास्ते पर ले जा सकता है, जिसे गहरे सत्य की कोई समझ नहीं है। अगर कोई बिना सही समझ के भी, थोड़ी ईमानदारी से नाम ले, तो मुक्ति के दरवाज़े खुलने लगते हैं।

पर यहाँ एक ज़रूरी बात भी है — दरवाज़ा खुल भी जाए, तो उसमें से अंदर जाना तो हमें ही पड़ेगा। जब तक दरवाज़ा बंद है, तब तक कुछ हो ही नहीं सकता। लेकिन एक बार कृष्ण का नाम वह दरवाज़ा खोल दे, तो अब हमें ही आगे बढ़कर उस दहलीज़ को पार करने की कोशिश करनी होगी। कृष्ण अपने सच्चे भक्तों के दिल में सब कुछ खुद ही दिखा देते हैं — जैसा गीता में कहा गया है, वे उन्हें ऐसी बुद्धि देते हैं जिससे वे उन तक पहुँच पाते हैं।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते

"मैं उन्हें वह बुद्धि-योग प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझ तक पहुँच जाते हैं।"

भगवद्गीता यथारूप 10.10

इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि हम शास्त्र पढ़ना छोड़कर बस जप ही करते रहें। असल में हम चौबीसों घंटे जप कर भी नहीं सकते, इसलिए हमें सुनना भी है, पढ़ना भी है, जप भी करना है, और अपने मन पर काबू भी पाना है। नाम सब कुछ हमारे सामने खोल देता है, और आखिर में मन को भी काबू में ला देता है

— लेकिन चूँकि हम खुद सही ढंग से नाम नहीं लेते, इसलिए ईमानदार कोशिश करते रहना बहुत ज़रूरी है।

फिर भी, इसके पीछे की सोच यही रहती है — नाम के साथ नामुमकिन भी मुमकिन हो जाता है। रूप गोस्वामी कृष्ण के नाम को यही महिमा देते हैं — कोई भी बीता हुआ अतीत नाम की ताकत के आगे इतना काला नहीं होता कि उसे बदला न जा सके।

पुरानी शिक्षा में भी यही बात कही गई है

कलिजुग केवल नाम अधारा, सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा"

कलियुग में सिर्फ नाम ही सहारा है; बार-बार इसका स्मरण करके इंसान इस भवसागर को पार कर जाता है।

नाम में विश्वास कैसे बढ़ाया जाए?

तो सवाल यह है कि नाम पर विश्वास कैसे बढ़ाया जाए?

इसका एक तरीका है — ऐसे साधुओं का साथ रहना, जिनका खुद नाम पर बहुत गहरा विश्वास है; उनके साथ रहने से यह विश्वास हम पर भी असर करने लगता है। लेकिन इसके अलावा एक और तरीका भी उतना ही असरदार है — बस जप करते रहना। महाप्रभु ने हमें यही सिखाया है कि बार-बार नाम लेते रहो, और

लगातार जप करते रहने से भरोसा अपने आप बनने लगता है। यानी जप सिर्फ भरोसे की माँग नहीं करता — जप खुद भरोसा भी पैदा करता है। नाम खुद हमें ऊपर उठाता है, यह हमें आगे बढ़ने की काबिलियत देता है, और आखिर में हमें भक्ति-रस भी दे देता है।

इसीलिए भक्तिविनोद ठाकुर ने "नाम-हट्ट" यानी नाम का बाज़ार शुरू किया था, जहाँ हमें नाम लेने की काबिलियत भी मिलती है, और साथ में नाम भी मिलता है। यही तो नाम का सबसे अनोखा तोहफ़ा है।

श्लोक ४ — नाम और प्रारब्ध कर्म

यद्-ब्रह्म-साक्षात्-कृति-निष्ठयापि

विनाशम् आयाति विना न भोगैः।

अपैति नाम स्फुरणेन तत् ते

प्रारब्ध-कर्मेति विरौति वेदः

वेद घोषणा करते हैं कि ब्रह्म-साक्षात्कार (ज्ञान मार्ग की निष्ठा) से भी मनुष्य के 'प्रारब्ध कर्म' बिना भोगे पूरी तरह नष्ट नहीं होते। परंतु हे पवित्र नाम! जीव की जिह्वा पर आपके मात्र एक बार प्रकट (स्फुरित) होने से ही वे सभी प्रारब्ध कर्म तुरंत विलीन हो जाते हैं।

चौथे श्लोक में रूप गोस्वामी उन लोगों की बात करते हैं जिन्हें ब्रह्मवादी कहा जाता है — यानी जो ब्रह्म का ध्यान करते हैं और ज्ञान के रास्ते पर चलते हैं। पृथ्वी के ऊपर भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य नाम के लोक हैं। बृहद्-भागवतामृत में बताया गया है कि ऐसे ब्रह्मवादी लोग तपोलोक में रहते हैं। "नेक्टर ऑफ डिवोशन" में बताया गया है कि चारों कुमार पहले ब्रह्मवादी हुआ करते थे, और

शुकदेव गोस्वामी भी बाहर से देखने में ब्रह्मवादी लगते थे, इससे पहले कि वे खुद भगवान कृष्ण के भक्त बने।

ब्रह्मवादी लोग सालों-साल ब्रह्म का ध्यान करते हुए समाधि में डूबे रहते हैं, लेकिन इससे भी ज़रूरी नहीं कि उनका प्रारब्ध कर्म खत्म हो जाए।

रूप गोस्वामी चार तरह के पाप-कर्मों की बात करते हैं — प्रारब्ध, अप्रारब्ध, कूट, और बीज। प्रारब्ध वह कर्म है जिसका फल अभी हमें भोगना पड़ रहा है। अप्रारब्ध वह दुख है जो आगे आने वाला है। कूट का मतलब है वह आदत, जो आगे चलकर हमसे पाप करवा सकती है। और बीज का मतलब है वह शुरुआती इच्छा, जिससे पाप का जन्म होता है। पहले इच्छा जन्म लेती है, फिर वह एक आदत बन जाती है, और फिर वह आदत एक पक्के इरादे में बदल जाती है।

कर्म-योग हो, ज्ञान-योग हो, या ध्यान-योग — इनमें से कोई भी हमें प्रारब्ध कर्म से पूरी तरह मुक्त नहीं कर सकता — "विनाशमायाति विना न भोगैः " — यानी इसे तो भोगकर ही खत्म करना पड़ता है। ये सारे रास्ते अप्रारब्ध, कूट, और कुछ हद तक बीज से तो मुक्त कर सकते हैं, पर प्रारब्ध से नहीं। गोरखनाथ को मानने वाले, अघोरी, मायावादी, और जैन धर्म को मानने वाले भी यही मानते हैं कि प्रारब्ध कर्म को खत्म होने में समय लगता है।

लेकिन रूप गोस्वामी एक बहुत बड़ी और अनोखी बात कहते हैं — जब नाम खुद प्रकट होता है, तो इससे प्रारब्ध कर्म भी मिट सकता है, और यहाँ तक कि बीज, यानी पाप करने की जो शुरुआती इच्छा है, वह भी खत्म हो सकती है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और बलदेव विद्याभूषण जी अपनी टीकाओं में समझाते हैं कि यहाँ "स्फुरणेन" शब्द का मतलब है शुद्ध जप — यानी शुद्ध नाम। यह शुद्ध नाम उसी जीभ पर खुद-ब-खुद प्रकट होता है, जो भगवान की सेवा के लिए समर्पित हो चुकी हो।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः

"जब जीभ आदि इन्द्रियाँ भगवान की सेवा के लिए तत्पर हो जाती हैं, तब भगवान का पवित्र नाम स्वयं ही उन पर प्रकट हो जाता है।"

श्री चैतन्य-चरितामृत (मध्य-लीला)17.136

फिर भी, यहाँ एक ज़रूरी शर्त भी है — प्रारब्ध कर्म पूरी तरह से तभी मिटता है, जब नाम खुद ऐसा चाहे। इसीलिए भक्तिविनोद ठाकुर अपने भजन में गाते हैं — "कृष्ण-नाम इच्छा-मय, जहे जहे सुखी होय" — यानी, मैं तो बस इसी में खुश हूँ कि नाम की जो भी इच्छा हो, वही हो। सोचने में तो लगता है कि शुद्ध नाम सारा प्रारब्ध कर्म मिटा ही सकता है, पर आखिर में यह भी नाम की अपनी मर्ज़ी पर

निर्भर करता है। हो सकता है कृष्ण किसी खास फल से हमें अभी मुक्त न करना चाहें, क्योंकि शायद उसे भोगना ही हमारे लिए किसी बड़ी भलाई का ज़रिया हो।

अभी हम ज़्यादातर लोग "नामाभास" की अवस्था में हैं। हालाँकि तकनीकी तौर पर देखा जाए, तो नामाभास भी प्रारब्ध कर्म को मिटाने की ताकत रखता है। भक्तिविनोद ठाकुर अपनी किताब "भक्ति-तत्व-विवेक" में नामाभास के दो स्तर बताते हैं — पूरा और अधूरा। हमारा नामाभास ज़्यादातर अधूरा ही होता है — धुँधला सा, अस्पष्ट सा, जिसमें कुछ बातें साफ दिखती हैं और कुछ अभी भी छिपी हुई रहती हैं। यही वजह है कि हमें प्रारब्ध कर्म भोगना ही पड़ता है, हालाँकि भगवान चाहें तो कभी भी हमें इससे मुक्त कर सकते हैं। वे इसे इसलिए भी जारी रख सकते हैं ताकि हम विनम्र बने रहें, हमारा अहंकार टूटे, या फिर किसी और भलाई के मकसद से, जो पूरी तरह हमारे ही फायदे के लिए सोची गई हो।

जब कर्म भगवान के हाथ में चला जाता है

बलदेव विद्याभूषण जी वेदांत-सूत्र पर टिप्पणी करते हुए एक बहुत सीधा सवाल उठाते हैं — क्या भक्त लोग प्रारब्ध कर्म से मुक्त हो जाते हैं? क्योंकि हम तो देखते ही हैं कि भक्त लोग भी कष्ट झेलते हैं। इसका जवाब वे यह देते हैं कि कृष्ण अपनी मर्ज़ी से यह तय करते हैं कि किसी भक्त के जीवन में कौन सा प्रारब्ध कर्म आगे भी चलेगा और कौन सा नहीं। एक साधारण इंसान के लिए तो

प्रारब्ध कर्म एक नदी की तरह बहता चला जाता है, लेकिन भक्त के मामले में कृष्ण खुद बीच में आकर उस बहाव को नियंत्रित कर सकते हैं।

इसे आसान भाषा में समझें तो — हमारा कर्म का हिसाब-किताब कृष्ण के पास रहता है, जबकि जो भक्त नहीं है उसका हिसाब-किताब यमराज के पास रहता है। कृष्ण अपनी योजना के हिसाब से इस हिसाब-किताब को मिटा भी सकते हैं, और चाहें तो जारी भी रख सकते हैं। तकनीकी तौर पर, नामाभास की वजह से प्रारब्ध कर्म यमराज की बही से निकलकर कृष्ण की बही में चला जाता है, और फिर कृष्ण ही तय करते हैं कि इसका क्या करना है। वेदांत-सूत्र के मुताबिक, जैसे-जैसे भक्ति में उन्नति होती जाती है, हमारा अच्छा कर्म हमारे भक्त दोस्तों को मिल जाता है, और बुरा कर्म उन लोगों के पास चला जाता है जो भक्त से जलते हैं — इसी तरह से भगवान अपने भक्तों को अप्रारब्ध कर्म से बचाते हैं।

यहाँ एक ज़रूरी चेतावनी भी है — अगर कोई जानबूझकर पाप करता है, तो भगवान उसके नतीजों को यूँ ही नहीं कर देंगे। वे एक बार, दो बार, या तीन बार माफ कर सकते हैं, पर हमेशा नहीं। अगर गलती जानबूझकर, सोच-समझकर की गई हो, तो भगवान उसके नतीजों से बचाने के लिए बीच में नहीं आएँगे। लेकिन अगर कुछ गलती अनजाने में हो जाए, तो वे उस कर्म को कुछ इस तरह से व्यवस्थित कर सकते हैं कि इंसान सुधर जाए और आखिर में मुक्त भी हो जाए। जैसा भगवद्गीता में कहा गया है —

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

"मैं ही सबकी अंतिम गति, पालनकर्ता, स्वामी, साक्षी, निवास-स्थान, शरण और सच्चा हितैषी हूँ। मैं ही सृष्टि और प्रलय का कारण, सबका आधार, विश्राम-स्थल और अविनाशी बीज हूँ।"

भगवद्गीता यथारूप 9.18

इसका सबसे अच्छा उदाहरण है कुब्जा की कहानी। कुब्जा मथुरा में एक कुबड़ी दासी थी। जब कृष्ण मथुरा आए, तो उसने उनका कपड़ा पकड़ लिया, जिससे बलराम और उनके बाकी दोस्तों के सामने कृष्ण को शर्मिंदगी महसूस हुई। कृष्ण ने उससे कहा कि वे उसके घर ज़रूर आएँगे। फिर उन्होंने अपने पैर उसके पैरों पर रखे, और अपने हाथ से उसकी ठुड्डी उठाकर उसकी टेढ़ी पीठ को सीधा कर दिया। वह एक बेहद खूबसूरत औरत बन गई — उसका सारा प्रारब्ध कर्म खत्म हो गया। यही भक्ति की असली ताकत है — कोई और रास्ता प्रारब्ध कर्म को इस तरह से मिटा नहीं सकता। दूसरी तरफ, अष्टावक्र जो एक बहुत बड़े ब्रह्मज्ञानी थे, वे अपने शरीर की आठ टेढ़ी हड्डियों से कभी भी मुक्त नहीं हो पाए।

फिर भी, विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एक बहुत ज़रूरी चेतावनी भी देते हैं — भक्ति का गलत फायदा नहीं उठाया जा सकता, वरना यह नाम के प्रति एक अपराध बन जाता है।

"नम्नो बलम् यस्य हि पापबुद्धिः "

वे कहते हैं कि जिसकी पाप करने की बुद्धि सिर्फ नाम के बल पर टिकी रहती है, वह सच में शुद्ध नहीं हो पाता, चाहे वह कितने भी नियम-कायदे क्यों न मान ले। और चूँकि नाम के प्रति किए गए अपराध को कोई और रास्ता दूर नहीं कर सकता, इसलिए एक सच्चा भक्त कभी यह प्रार्थना नहीं करता कि "हे नाम, मेरा सारा कर्म मिटा दो।" बल्कि वह यह प्रार्थना करता है कि वह करोड़ों जन्मों तक भी कर्म भोगने के लिए तैयार है, बस उसे कृष्ण की सेवा में लगे रहने दिया जाए। इससे एक और गहरा सवाल उठता है — भक्त को किस भाव से नाम लेना चाहिए? भक्त कभी यह नहीं माँगता कि उसे सुख-शांति के बदले में कर्म और तकलीफ़ से मुक्त कर दिया जाए — क्योंकि कृष्ण हमारे नौकर नहीं हैं।

श्लोक ५ — नाम के प्रति मेरा प्रेम और बढ़े

अघ-दमन-यशोदानन्दनौ नन्दसूनो

कमलनयन-गोपीचन्द्र-वृन्दावनेंद्राः।

प्रणतकरुण-कृष्णौ इत्यनेक-स्वरूपे

त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय ॥ ॥५॥

हे देव! अघबकासुरमर्दन, यशोदानंदन, नंदनंदन, कमलनयन, गोपीचंद्र, वृंदावनेन्द्र, शरणागतवत्सल और कृष्ण जैसे आपके अनगिनत दिव्य नाम हैं। जो भी देहधारी जीव एक बार आपकी इस महिमा का आश्रय ले लेता है, उसे आप फिर कभी नहीं छोड़ते (उसका सदा कल्याण करते हैं)।

भक्तिविनोद ठाकुर अपने भजन "हरिनाम तव अनेक स्वरूप" में नाम को सीधे संबोधित करते हुए कहते हैं कि नाम के तो कई-कई रूप हैं। इसी श्लोक में रूप गोस्वामी उनमें से कुछ रूप बताते हैं — अघ-दमन, यानी अघासुर का वध करने वाले; यशोदा-नंदन, यानी यशोदा माँ के बेटे; नंद-सूनो, यानी नंद महाराज के बेटे; कमल-नयन, यानी जिनकी आँखें कमल जैसी हैं; गोपी-चंद्र, यानी कृष्ण, जो चाँद

की तरह हैं जिनके आने से सफेद कमल जैसी गोपियाँ खिल उठती हैं; और वृंदावनेंद्र, यानी वृंदावन के राजा।

गोपी-चंद्र नाम का मतलब खासतौर पर बहुत सुंदर है। शिक्षाष्टकम् के पहले श्लोक में "कैरव-चंद्रिका-वितरणम्" की बात कही गई है — यानी चाँदनी में खिलते हुए सफेद कमल। ठीक वैसे ही, गोपियाँ भी चाँद जैसे भगवान के साथ रहकर खिल उठती हैं; इसीलिए नाम रखा गया है गोपी-चंद्र। भक्तिविनोद ठाकुर सिखाते हैं कि जब भक्त सही मन और सही भावना से नाम लेते हैं, तो कृष्ण के बाकी सारे नाम भी अपने आप उनके सामने आने लगते हैं। जब कोई हरे कृष्ण का जप करता है, तो उसे अपने आप यशोदा-नंदन, कालिय-दमन, गोविंद, माधव — और भी न जाने कितने नाम याद आने लगते हैं। इसीलिए हरे कृष्ण मंत्र को महामंत्र कहा जाता है — इसमें बाकी सारे मंत्र भी समाए हुए हैं। अगर हमारा दिल सच में साफ है, तो हरे कृष्ण का जप अपने आप कृष्ण के अलग-अलग रूपों और उनकी लीलाओं की याद दिला देता है।

कैसे पता चलेगा कि हृदय शुद्ध हो रहा है?

इसे परखने का एक आसान तरीका है — जब आप जप करते हैं, तो क्या आपको कृष्ण के रूप, उनके गुण, और उनकी लीलाएँ याद आती हैं? अगर नहीं आतीं, तो हमें यह सोचना चाहिए कि हमारे दिल में कौन सी रुकावट है। और

अगर हमें खुद यह समझ न आए, तो किसी भक्त से इस बारे में बात करनी चाहिए। अगर जप करते वक़्त कभी भी कृष्ण की याद नहीं आती, तो जप सूखा-सूखा सा ही रह जाता है — और एक अशुद्ध दिल में तो ऐसा होना ही तय है। लेकिन जब दिल साफ होता है, तो सबसे पहले एक तरह का आनंद आता है, और उसी आनंद के भीतर ही कृष्ण खुद प्रकट होते हैं।

जैसे सूरज उगने से पहले धीरे-धीरे रोशनी और गर्मी आने लगती है, और उसके बाद ही सूरज अपनी पूरी चमक के साथ सामने आता है — ठीक वैसे ही, जप करते-करते कृष्ण भी हमारे दिल के करीब आने लगते हैं। हमें धीरे-धीरे एक तरह का आनंद महसूस होने लगता है — बिल्कुल वैसे ही जैसे सूरज उगने से पहले उसकी रोशनी और गर्मी महसूस होती है — और उसी आनंद भरे दिल में कृष्ण प्रकट होते हैं। कृष्ण कभी भी दुखी दिल में प्रकट नहीं होते; इसीलिए श्रील प्रभुपाद बार-बार कहा करते थे, "जप करो और खुश रहो।" आखिर कृष्ण किसी ऐसे दिल में क्यों आएँगे जो निराशा और दुख से भरा हो? भगवद्गीता में भी यही बात कही गई है — जो इंसान ब्रह्म में स्थित है, जो हमेशा खुश रहता है, जो न किसी बात का शोक करता है और न किसी चीज़ की चाह रखता है, और जो सभी जीवों के साथ एक-सा व्यवहार करता है, वही मेरी सबसे ऊँची भक्ति को पा सकता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

"जो ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर सदा प्रसन्नचित्त रहता है, न किसी बात का शोक करता है और न किसी वस्तु की कामना, तथा जो सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखता है, वह मेरी परम भक्ति को प्राप्त करता है।"

भगवद्गीता यथारूप 18.54

जब हृदय में आनंद आता है, तो प्रेम भी जन्म लेता है, और जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कृष्ण खुद प्रकट होते हैं। इसी अवस्था में सच्चा ज्ञान भी अपने आप आता है — जब भक्ति-योग से मन खुश हो जाता है, तो जो इंसान सांसारिक मोह-माया से मुक्त हो चुका है, उसे भगवान की असली सच्चाई का सीधा अनुभव होने लगता है।

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ।

भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥

इस प्रकार भगवान की प्रेमाभक्ति के प्रभाव से जिसका मन पूर्णतः प्रसन्न हो चुका है, वह समस्त भौतिक आसक्तियों से मुक्त *(*मुक्तसङ्ग*)* हो जाता है और उसे भगवान के यथार्थ स्वरूप का वैज्ञानिक ज्ञान *(*भगवद्-तत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव*)* प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्-भागवतम् *1.2.20*

एक भक्त की असली सेवा यही है कि वह अंदर से हमेशा खुश रहे — फिर भी उसके भीतर एक तरह की तड़प और उदासी भी बनी रहती है। ये दोनों भावनाएँ एक साथ ही चलती हैं। कृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्य-चरितामृत में इसे बहुत सुंदर ढंग से समझाते हैं — जैसे केसर और कपूर को खीर में मिलाकर उसमें अलग-अलग तरह के स्वाद पैदा किए जाते हैं, वैसे ही जो भक्त भक्ति के लिए तैयार हो चुका होता है, वह एक साथ बेइंतहा खुशी और एक गहरी तड़प — दोनों का अनुभव करता है, जैसे एक ही खाने में दो स्वाद मिल गए हों।

कृष्ण नाम का असली मतलब

चैतन्य-चरितामृत में एक किस्सा है, जब वल्लभ भट्ट ने महाप्रभु से पूछा कि वे इतनी ज़ोर से हरे कृष्ण मंत्र का जप क्यों करते हैं, क्योंकि आमतौर पर एक पत्नी अपने पति का नाम ज़ोर से नहीं लेती। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे एक पत्नी अपने पति का नाम आसानी से ज़ोर से नहीं लेती, वैसे ही किसी भी स्वामी का नाम आराम से नहीं लिया जाना चाहिए। इस पर महाप्रभु ने जवाब दिया कि अगर पति खुद अपनी पत्नी को उसका नाम लेने के लिए कहे, तो वह पत्नी उस आदेश को मानती है।

फिर वल्लभ भट्ट ने कृष्ण के नाम की अपनी समझ बताई — उन्होंने कहा कि "कृ" का मतलब है आकर्षण, और "ण" का मतलब है मोक्ष, और इसी तरह और भी कई अर्थ बताए। महाप्रभु ने कहा कि यह सब बातें सही हैं, लेकिन वे खुद सिर्फ एक ही मतलब जानते हैं — कृष्ण यानी नंद बाबा के बेटे। महाप्रभु यह अच्छे से समझते थे कि दार्शनिक नज़रिए से नाम के कई मतलब निकाले जा सकते हैं, पर सच्चाई यह है कि नाम से सीधे कृष्ण का रूप हमारे सामने आ जाना ही इसका सबसे असली मतलब है, और यही जीवन की सबसे बड़ी सफलता भी है।

रूप गोस्वामी इसी श्लोक में बिल्कुल यही बात कह रहे हैं — कृष्ण और कृष्ण का नाम, दोनों एक ही हैं, अलग नहीं। जब हम हरे कृष्ण का जप करते हैं, तो धीरे-धीरे हमें यह एहसास होने लगता है कि कृष्ण हमारे साथ ही हैं। और एक दिन ऐसा भी आएगा जब हम कृष्ण के सुंदर रूप को अपने दिल के भीतर भी देखेंगे, और बाहर हर जगह भी। एक सबसे ऊँचा भक्त तो प्रेम की ताकत से भगवान को हर जगह देखता है — जो हर जीव में अपनी आत्मा के भीतर भगवान को देखता है, और हर जीव को भगवान में ही देखता है, वही सबसे बड़ा भक्त कहलाता है।

महाप्रभु ने खुद यह अनुभव किया था — उन्होंने एक पहाड़ को गोवर्धन पर्वत समझ लिया, और समुद्र को यमुना नदी समझ लिया। यह उनके दिल पर प्रेम के गहरे असर की वजह से हुआ। इसीलिए रूप गोस्वामी नाम को सीधे संबोधित

करते हुए कहते हैं — "हे कृष्ण, आपके तो इतने सारे रूप हैं। आप हमें आनंद भी दे सकते हैं, और आप खुद को भी दे सकते हैं — यानी सीधे कृष्ण को। मैं आपकी शरण लेता हूँ; मेरा प्रेम और मेरा लगाव आपके प्रति और भी बढ़े।"

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

जो मनुष्य सभी चराचर प्राणियों में अपने आराध्य देव भगवान श्रीकृष्ण के ही भाव *(*उपस्थिति*)* को देखता है*,* और समस्त प्राणियों को भगवान के ही भीतर *(*आश्रित*)* देखता है*,* वह *'*भागवतोत्तम*'* अर्थात् सर्वोच्च स्तर का *(*उत्तम अधिकारी*)* वैष्णव भक्त है

श्रीमद्-भागवतम् 11.2.45

बस नाम ले लेना, और नाम के प्रति सच्चा प्यार पैदा होना — ये दोनों बातें एक जैसी नहीं हैं। भक्तिविनोद ठाकुर अपने नाम-रुचि वाले भजन में समझाते हैं कि सबसे पहले हमें बस सीधा-सादा नाम लेना शुरू करना चाहिए, और फिर धीरे-धीरे नाम के प्रति सच्चा प्यार जगाना चाहिए, ताकि हम जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि तक पहुँच सकें।

श्लोक ६ — नाम, भगवान के विग्रह से भी ज़्यादा दयालु रूप है

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम स्वरूपद्वयं

पूर्वस्मात्परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे ।

यस्तस्मिन्विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवेद्-

आस्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति ॥६॥

हे प्रभु! इस जगत में आपके दो स्वरूप प्रकट होते हैं—एक 'वाच्य' (स्वयं भगवान का विग्रह रूप) और दूसरा 'वाचक' (भगवान का पवित्र नाम)। इन दोनों में से आपका नाम स्वरूप (वाचक) अत्यंत दयालु है। क्योंकि यदि कोई क्रूर और पापी मनुष्य साक्षात भगवान के प्रति अपराध करता है, तो वही मनुष्य जब शुद्ध भाव से आपके 'नाम' का कीर्तन और आश्रय करता है, तो आप तुरंत उसके हृदय में कृष्ण के प्रति दिव्य प्रेम (रति) जागृत कर देते हैं।

इस श्लोक में रूप गोस्वामी बताते हैं कि कृष्ण के स्वरूप को दो तरह से समझा जा सकता है — एक है वाच्य, यानी उनका विग्रह या मूर्ति, और दूसरा है वाचक, यानी उनका नाम। ये दोनों ही कृष्ण से बिल्कुल अलग नहीं हैं, फिर भी इनमें एक बड़ा फर्क है — विग्रह हमेशा एक ही जगह टिका रहता है, जबकि नाम पूरी

दुनिया में, कहीं भी जा सकता है — यहाँ तक कि सीधा हमारे दिल के अंदर भी। इसीलिए भगवान के विग्रह-रूप को अचल ब्रह्म कहा जाता है, और कृष्ण के नाम को चल ब्रह्म कहा जाता है।

चूँकि कृष्ण नाम के रूप में कहीं भी पहुँच सकते हैं, इसलिए एक तरह से नाम और भी ज़्यादा दयालु है। विग्रह की पूजा करते वक़्त हुई कोई गलती भी नाम के जप से ठीक की जा सकती है। इसीलिए श्रील प्रभुपाद ने आरती के दौरान नाम-कीर्तन करने की प्रथा शुरू की थी। आरती करते वक़्त पुजारी से कोई न कोई छोटी-मोटी गलती हो ही जाती है — कोई भी इंसान पूरी तरह गलती-मुक्त नहीं होता — और जो लोग इस तरह की गलती देखते हैं, वे खुद भी उससे कहीं न कहीं प्रभावित हो सकते हैं। इसका इलाज है कीर्तन — कीर्तन सबकी गलतियों का असर मिटा देता है। इसीलिए विग्रह-पूजा के साथ हमेशा कीर्तन भी होना चाहिए।

यह तरीका पंचरात्र में बताया गया है, हालाँकि परंपरा के मुताबिक यह दक्षिण भारत के कुछ इलाकों में अब लगभग खत्म हो चुका है। पहले श्री वैष्णव लोग आरती के वक़्त दिव्य प्रबंधम का पाठ किया करते थे, पर यह प्रथा धीरे-धीरे कम होती चली गई। व्यासतीर्थ और वादिराज ने भी आरती के दौरान कीर्तन गाने की प्रथा शुरू की थी, पर यह भी काफी हद तक बंद हो चुकी है। इसी वजह से कहा जाता है कि भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने एक बार कहा था कि चैतन्य

महाप्रभु का मिशन दक्षिण भारत में पूरी तरह से नहीं पहुँच पाया, और दुर्भाग्य से दक्षिण भारत के लोगों तक महाप्रभु का प्रेम भरा संदेश नहीं पहुँच सका, और वे ज़्यादातर सिर्फ रीति-रिवाज़ों में ही उलझे रह गए। इसीलिए भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने यह इच्छा जताई थी कि वे खुद वापस जाकर दक्षिण भारत में प्रचार करेंगे।

श्लोक ७ — जब हर दिन एक त्यौहार बन जाता है

अब सवाल यह उठता है — अगर भगवान का नाम इतना शक्तिशाली है कि यह प्रारब्ध कर्म को भी मिटा सकता है और इतना आनंद भी दे सकता है, तो जो कोई नाम के खिलाफ कोई अपराध कर बैठे, उसका क्या होगा?

सूदिताश्रित-जनार्ति-राशये

रम्य-चिद्-घन-सुख-स्वरूपिणे ।

नाम गोकुल-महोत्सवाय ते

कृष्ण पूर्ण-वपुषे नमो नमः ॥७॥

हे नाम प्रभु! आप अपनी शरण में आए हुए भक्तों के कष्टों के बड़े से बड़े समूह को भी तत्क्षण नष्ट कर देते हैं। आपका स्वरूप परम सुंदर, दिव्य और घनीभूत आध्यात्मिक आनंद से परिपूर्ण है। आप संपूर्ण गोकुल के लिए एक महान आनंदमयी उत्सव हैं। भगवान श्रीकृष्ण के पूर्ण विग्रह (स्वरूप) स्वरूप आपको मेरा बारंबार प्रणाम है।

रूप गोस्वामी सातवें श्लोक में इसी सवाल का जवाब देते हैं। वे कहते हैं कि अगर नाम की शरण में आया हुआ कोई इंसान नाम के खिलाफ कोई गलती कर बैठे, तो नाम खुद उसे माफ कर सकता है — पर शर्त यह है कि वह इंसान वही नाम लेता रहे। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इसीलिए पद्म पुराण से जुड़ी शिक्षा में कहा गया है कि लगातार जप करते रहने से इंसान नाम के खिलाफ की गई गलतियों से भी मुक्त हो सकता है — बशर्ते वह आगे और गलती न करे, और यह समझते हुए जप करे कि वह कृष्ण का सेवक है। बार-बार गलती नहीं दोहरानी चाहिए; बल्कि खुद को कृष्ण का सेवक मानते हुए जप करना चाहिए।

आमतौर पर जप हमें सिर्फ पापों से मुक्त करता है, पर ज़रूरी नहीं कि सारे अपराधों से भी मुक्त कर दे — सिर्फ शुद्ध जप ही अपराधों से मुक्ति दिलाता है। अब सोचिए, जब एक वैष्णव खुद अपने खिलाफ की गई गलतियों को दिल में नहीं रखता, तो फिर नाम भला हमें माफ क्यों नहीं करेगा? कृष्ण ने खुद भृगु मुनि को माफ कर दिया था, जब भृगु मुनि ने गुस्से में आकर उनकी छाती पर लात मार दी थी। अपने खिलाफ की गई गलतियों को कृष्ण आसानी से माफ कर देते हैं — पर वैष्णवों के खिलाफ की गई गलतियों को वे कहीं ज़्यादा गंभीरता से लेते हैं। किसी भक्त की बुराई करना, यानी साधु-निंदा, यह नाम के खिलाफ एक बहुत बड़ा अपराध माना जाता है, और इससे नाम तभी मुक्ति देता है जब इंसान उस साधु से माफी माँगे और उसकी सेवा करे।

इस दुनिया में माफी माँगना बहुत ही मुश्किल काम है, क्योंकि हमारा अहंकार हमें अपनी गलती मानने ही नहीं देता — खासकर जब हमें लगता है कि हम सही हैं। खुद अपनी गलती स्वीकार करना भी बड़ा मुश्किल है। लेकिन नाम की ताकत से एक वैष्णव यह सीख जाता है कि सही होते हुए भी झुक जाना चाहिए, क्योंकि यह एक गहरी सच्चाई है — जो कृष्ण के सामने झुकता है, कृष्ण खुद उसे ऊपर उठा लेते हैं; और अगर हम खुद नहीं झुकते, तो कृष्ण खुद हमें झुका देते हैं।

नाम हर दिन को एक त्यौहार बना देता है

नाम हमें बहुत गहरा आनंद भी देता है — "***रम्य-चिद्-घन-सुख-स्वरूपिणे ।***" — इतना कि हम इस दुनिया के सुख को भूल ही जाते हैं, और हमारा हर दिन एक त्यौहार जैसा बन जाता है। ब्रह्म-संहिता में बताया गया है कि जो इंसान नाम से जुड़ जाता है, उसके लिए हर दिन एक उत्सव बन जाता है, उसका हर कदम एक नाच बन जाता है, और उसका हर शब्द एक गीत बन जाता है। भौतिक दुख-तकलीफ़ें तो फिर भी आती रहती हैं, पर वे अब उसकी आत्मा को उतना छू नहीं पातीं। वह इंसान अपने दुखों का सामना करता तो है, पर उसे अपने भीतरी सुख को नष्ट नहीं करने देता।

वह इंसान हमेशा भीतर से खुश रहता है, और उसी खुश दिल में कृष्ण का रूप प्रकट हो जाता है — "कृष्ण पूर्ण-वपुषे नमो नमः।" फिर वह इंसान अपनी आत्मा

की आँखों से कृष्ण की सुंदरता को हर वक़्त देखता रहता है — उनकी सुंदर आँखें, उनके होंठ, उनकी बांसुरी, उनका चौड़ा सीना, उनके चरण, और उनका पूरा रूप उसके दिल में हमेशा बना रहता है। जैसा कृष्ण खुद गीता में वादा करते हैं, उनका भक्त कभी उनसे दूर नहीं होता, और वे भी कभी अपने भक्त से दूर नहीं होते।

इस श्लोक में रूप गोस्वामी सही ढंग से नाम-जप करने के चार नतीजे बताते हैं, जो एक के बाद एक होते हैं:

1. यह हमें पापों और अपराधों से मुक्त करता है।
2. यह हमारे हृदय में सुख लेकर आता है।
3. यह हमें भक्ति का रस देता है।
4. यह हमारे हृदय में कृष्ण के रूप को प्रकट कर देता है।

सही ढंग से नाम-जप करने पर ये सारे नतीजे इसी क्रम में सामने आते हैं।

श्लोक ८ — सबसे मीठा अमृत

नारद-वीणोज्जीवन

सुधोर्मि-निर्यासि-माधुरी-पूर ।

त्वं कृष्ण-नाम कामं

स्फुर मे रसने रसेन सदा ॥८॥

हे कृष्ण-नाम! आप देवर्षि नारद की वीणा से निकलने वाले उज्ज्वल भक्ति रस, राग और अमृत की तरंगों के परम मधुर निचोड़ हैं। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप पूर्ण रस और दिव्य आनंद के साथ सदैव मेरी जिह्वा पर नृत्य करते रहें, सदा स्फुरित होते रहें।

श्रील प्रभुपाद ने भक्तिविनोद ठाकुर के भजन "नारद मुनि भजाय वीणा" पर टिप्पणी करते हुए इसी आखिरी श्लोक का ज़िक्र किया था, और यह भजन खुद इसी श्लोक पर आधारित है। रूप गोस्वामी कहते हैं कि नारद मुनि अपनी वीणा बजाते हुए हमेशा कृष्ण का नाम लेते रहते हैं, और धीरे-धीरे शिव और ब्रह्मा जी भी उनके साथ जुड़ जाते हैं।

नाम सबसे मीठी चीज़ है, यह अमृत का सबसे शुद्ध हिस्सा है। इसीलिए रूप गोस्वामी नाम से प्रार्थना करते हैं कि यह उनकी जीभ पर आकर बस जाए, क्योंकि नाम ही खुद से रस निकालने में सबसे माहिर है — यह हर कदम को स्वाद से भर देता है, "स्वादु स्वादु पदे पदे", यानी हर कदम पर मिठास ही मिठास।

जब कोई इंसान नाम लेता है, तो उसमें हर पल का रस चखने की क्षमता आ जाती है — चाहे वह इस दुनिया से जुड़ा रस हो, भगवद्गीता से जुड़ा हो, श्रीमद्भागवतम् से जुड़ा हो, या फिर सीधे कृष्ण से जुड़ी किसी भी बात से जुड़ा हो। वह इंसान खुद रस से भर जाता है। और यही तो जीवन का असली मकसद है — आनंदमयोऽभ्यासात्, यानी लगातार अभ्यास से आनंद को पाना। श्रील प्रभुपाद कहा करते थे कि जीवन का मकसद यही होना चाहिए कि हम कृष्ण के साथ रहकर आनंद लें, और उन्होंने यह भी सलाह दी थी कि नामाष्टकम् को हर रोज़ पढ़ना चाहिए, और नाम से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें ये सारी अनुभूतियाँ दे।

भक्तिविनोद ठाकुर भी अपने ही शब्दों में यही बात कहते हैं —

"नाम बिना किछु नाहिको आर"

नाम बिना कुछ नहीं, चौदह भुवनों के बीच। यानी, इस पूरे भौतिक संसार के चौदह लोकों में, नाम से बढ़कर कीमती कुछ भी नहीं है।

और यहीं आकर नामाष्टकम् की यह पूरी यात्रा अपने आखिरी पड़ाव पर पहुँचती है — नाम की ताकत को पहचानने से शुरू होकर, मायावाद को चुनौती देते हुए, इस भरोसे के साथ कि कोई भी आत्मा इसके लायक नहीं होने से बाहर नहीं है, इस वादे के साथ कि प्रारब्ध कर्म भी घुल सकता है, नाम की मिठास, इसकी दया, इसके रस को महसूस करते हुए — और आखिर में, सीधे कृष्ण तक जाकर।

लेखक के बारे में

डॉ. केशवानंद दास इस्कॉन से जुड़े हुए हैं — यानी "इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर कृष्ण कॉन्शियसनेस" — और वहाँ वे पूरे समय प्रचार का काम करते हैं। उन्होंने मणिपाल में डॉक्टरी की पढ़ाई की, यानी एम.बी.बी.एस. किया। पढ़ाई के दौरान ही, 1994 में, पहली बार उनका परिचय कृष्ण भावनामृत से हुआ। कुछ साल बाद, 1999 में, उन्होंने पूरी तरह से इस आंदोलन से जुड़ने और प्रचार करने का फैसला कर लिया। तब से लेकर आज तक, वे लगातार सच्चाई को समझने और लोगों तक पहुँचाने में लगे हुए हैं।

उनके गुरु हैं एच.एच. भक्ति विकास स्वामी, जो खुद ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद के शिष्य हैं। इन्हीं गुरु के मार्गदर्शन में डॉ. केशवानंद दास ने विज्ञान और अध्यात्म — दोनों को जोड़कर काफी गहराई से पढ़ाई और रिसर्च की है। वे अक्सर भारत भर में घूमते रहते हैं और अलग-अलग जगहों पर अध्यात्म से जुड़े विषयों पर सेमिनार लेते हैं।

उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं, और दुनिया भर के कॉलेजों में जाकर विज्ञान और अध्यात्म को जोड़ने वाले सेमिनार दिए हैं। आजकल वे पंजाब के राजपुरा में एक फार्म चला रहे हैं, जिसका नाम है बद्रिकाश्रम। साथ ही, वे एक "वर्णाश्रम

कॉलेज" शुरू करने की तैयारी में भी लगे हुए हैं। उनका पूरा फोकस इसी बात पर है कि कैसे अध्यात्म को विज्ञान की नज़र से समझा जाए, और कैसे प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर एक खुश और संतोषी ज़िंदगी जी जाए।

संपर्क

वेबसाइट: keshavananddas.com

इंस्टाग्राम: instagram.com/keshav_anand_das

फेसबुक: facebook.com/KeshavAnandDasOfficial

फार्म प्रोजेक्ट: badrikashram.com

यूट्यूब:

youtube.com/@keshvananddas,

youtube.com/@KeshavAnandDasEng,

youtube.com/@KAP-unfiltered,

youtube.com/@ScienceandVedas